Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2021 SHISRRJ | Volume 4 | Issue 1 | ISSN : 2581- 6306

आदिवासी साहित्य में आदिवासी नाटकों व रंगमंच का वर्तमान तथा भविष्य

मनीष कुमार
पी-एच.डी. शोध छात्र,
विश्वभारती, शांतिनिकेतन, प. ब. भारत।

Article Info
Volume 4, Issue 1
Page Number : 24-31
Publication Issue :
January-February-2021

सारांश– हिन्दी मे भी आदिवासी नाटकों को स्वीकार्यता प्राप्त होती जा रही है। हिन्दी रंगमंच में स्त्री ने अपना परचम लहराया। चाहे वह नाटककार के रूप में हो या निर्देशक के रूप में अन्यथा रंगकर्मी के रूप में। सभी रूपों में भारतीय रंगमंच मे स्त्री की उपस्थिति को स्वीकार कर लिया है। इसी तरह आदिवासी नाटक और रंगमंच हर भाषा में उपलब्ध होने के साथ साथ अपनी अलग पहचान बनाते जा रहे है। नाटक व रंगमंच के माध्यम से आदिवासी समाज अपने जीवन के सभी परिदृश्यों को सहजता,गंभीरता, सरलता, उद्देश्यपूर्ण आदि बिंदुओं से उभर रहे है। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय जैसे बड़े संस्थानों को भी आदिवासी कलाओं व रंगमंच का सहारा लेना पड़ रहा है। यह एक नएपन की स्वीकार्यता है। आदिवासी नाटकों व उनके रंगमंच मे नयापन है, प्रभावी पन है। जिससे आदिवासी कलाकारों और नाटककारों की पहचान भी धीरे धीरे वृहत रूप धारण कर रही है। जिससे आदिवासी कलाकारों व नाटककारों के साथ साथ निर्देशक भी अपनी कला का परचम लहरा रहे है। इसमें गैर आदिवासी कलाकारो और नाटककारों का भी बड़ा योगदान है। जो निष्पक्षता के साथ आदिवासी समाज के मुद्दों को गंभीरता से लेकर रचना व मंच पर स्थान दे रहे है। हिन्दी मे आदिवासी नाटक लिखने वाले रचनाकारों की संख्या में भी इजाफा हो रहा है। हिन्दी आदिवासी नाटक अपनी संस्कृति, सभ्यता, परम्परा के मानव कल्याण के उद्देश्य से मानवीयता,सामूहिकता भी भारतीय लोक समाज में प्रसारित कर रहे है।

मुख्य– आदिवासी, नाटक, हिन्दी, संस्कृति, रंगमंच, मानवीयता, सामूहिकता।

Article History
Accepted : 06 Jan 2021
Published : 16 Jan 2021

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

हिन्दी आदिवासी रंगमंच नई नई खोजों, गतिविधियों के साथ रंगमंच मे अपनी जगह बना रहा हैं । रंगमंच साहित्य की वह कला हैं जो सभी तरह की मनोस्थितियों, मानसिकताओं, वैचारिक मान्यताओं, परम्पराओं, परिदृश्यों, पृष्ठभूमियों, परिस्थितियों, अवरोधों आदि को जीने व जीवंत रखने का माध्यम हैं । साहित्य में इस विधा के मंचीय स्वरूप को सबसे सशक्त माना जाता हैं क्योंकि यह समाज से सीधे रूप में व प्रत्यक्ष रूप में संवाद स्थापित करता हैं । नई संज्ञाओं, परिभाषाओं, संकल्पनाओं, समीक्षाओं से भारतीय रंगमंच समृद्ध हुआ हैं । रंगमंच में वैश्विक स्तर पर फिलिपियन द्वीप समूह के नेग्रीटो, ब्राजील के रेड इंडियन, दक्षिण व उत्तर अमेरिका के रेड इंडियन तथा ऑस्ट्रेलिया के मूल निवासी शामिल हैं । रंगमंच इनकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि आधरित नृत्य नाट्य को मंच पर मुखर रूप से उभरता हैं । मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र के प्रथम सिद्धांतकार गोआर्गी प्लेखानोव अपनी पुस्तक 'कला के सामाजिक उद्गम' के पृष्ठ संख्या 104 पर कहते है कि "नृत्य नाट्य अनुकरण की मानसिक क्षमता के माध्यम से अपनी जीवन शैली की दिनचर्या में घटने वाली सभी स्थितियों का अनुकरण करता हैं । जिसके जरिये वह अनेक तरह के भावो को उद्वेलित करता हैं । वह अपनी भावनाओं को अनुकरण के माध्यम से प्रस्तुत करता हैं ।" इसी पृष्ठ पर गोआर्गी प्लेखानोव कहते है कि "ऑस्ट्रेलिया में होने वाले कंगारू नृत्य में जानवरों की हरकतों का इतना सटीक अनुकरण प्रस्तुत करते है कि यूरोप के किसी भी थिएटर में तालिओं की गड़गड़ाहट गूँज उठती हैं ।" प्लेखानोव और आयर दोनों ही आदिवासी के नृत्य व नाट्य की मंच प्रस्तुति से हतोत्साहित हैं । आदिवासी अपने अनुकरण में इतना मस्त हो जाता है कि वह कलात्मक स्वरुप को धारण कर लेता हैं । इस अनुकरण को विश्व के किसी भी मंच पर प्रस्तुत किया जाये तो आप समझ सकते हैं कि यूरोप के थिएटर में जो हुआ वही पूरे विश्व के मंच पर भी होगा । इस तरह आदिवासी अपनी मनोस्थितियों को मंच से प्रस्तुत करते हैं । आदिवासी के जीवन में इतने विषय हैं कि किसी भी विषय को मंच पर प्रस्तुत करने से उनके अनेक स्वरूपों को जाना जा सकता हैं । उतर व दक्षिण अमेरिका के रेड इंडियनो की स्थिति, परिस्थिति को मंच पर स्थान मिला हैं । इनके नृत्य नाट्य तथा अनेक तरह प्रचलन में व्यवस्थाओं, मान्यताओं को मंच पर नए नए ढंग से चित्रण किया गया हैं । उनके शिकार करने की सभ्यता, गोदना बनवाने की परम्परा, भोजन पकाने के साधन, रहने का स्थान, विवाह आदि अनेक विषयों को मंच पर प्रस्तुत किया जाता हैं । आदिवासियों की जीवन शैली से उतर दक्षिण अमेरिका के मूलनिवासियों ने वहां के सर्व समाज को अपनी संस्कृति का परिचय दिया हैं । आधुनिकता की दौड़ में विकसित होने के क्रम में इनके बीच पनपे अव्यवस्थाओं, अन्धविश्वासों को भी मंच से दर्शाया गया हैं । ब्राजील के रेड इंडियन आदिवासियों ने अपने परिवेश को मंच के माध्यम से सर्व समाज के सम्मुख रखने का प्रयत्न किया गया हैं । आदिवासी रंगमंच में भी यथार्थ स्वरुप को स्थान दिया जाता हैं । आदिवासी समाज के जीवन दर्शन को मंच पर प्रस्तुत किया जा रहा हैं ।

आदिवासी रंगमंच में यथार्थ स्वरुप बहुत प्रभावी होता हैं । उसमें आदिवासी जीवन की यथार्थ रूपी समस्याएं निहित रहती हैं । आदिवासी समाज के साहित्य में लोक नाटकों की बड़ी संख्या हैं । आदिवासियों द्वारा लोक नाटकों को उनके सांस्कृतिक स्थान अखड़ा में प्रस्तुत किया जाता हैं । अखडा हर आदिवासी समुदाय का सांस्कृतिक स्थल होता हैं । अखडा के विषय पर डा. प्रमोद मीणा 'आदिवासी जीवन जगत की बारह कहानियां एक नाटक' पुस्तक की भूमिका में कहते है कि "आदिवासी समाज के इस परम्परागत लोकतंत्र में अखडा का महत्वपूर्ण स्थान रहा हैं । अखडा गाँव का सांस्कृतिक स्थल भी होता है। चाहे ख़ुशी का अवसर हो या गम का, चाहे कोई उत्सव हो या कोई आपदा आयी हो आदिवासी समाज मिलजुल कर ही पर्व त्योहार मनाता है और पारस्परिक बातचीत से ही किसी समस्या का हल निकलता है इस पूरी प्रक्रिया के केंद्र में होता है अखडा।" आदिवासी या गैर आदिवासी निर्देशक को अपनी प्रस्तुति में अखडा का इस्तेमाल करना है तो निर्देशक को अखड़ा से परिचय या प्रत्यक्षदर्शी होना अनिवार्य हैं । तभी वह अखडा के यथार्थ स्वरुप को अपनी प्रस्तुति में वही रूप दे पायेगा । जो आदिवासी समाज में प्रचलित है अन्यथा वह ऐसा नहीं करता तो वह मूल भावना को खो देता हैं । जिसे वह मंच पर प्रस्तुत करना चाहता हैं । आदिवासी रंगमंच को प्रस्तुत करने में इसी मूल यथार्थ के अंश समाहित है। जो उसे अन्य रंगमंच से भिन्न करते हैं और साथ ही भारतीय रंगमंच में अपनी अलग पहचान भी बनाते हैं।

वर्तमान समय में आदिवासी रंगमंच के विषयों में स्वतः ही नाटकीयता समाहित हैं । उसे मंच पर लाने के बाद भी वह उसी नाटकीयता में प्रदर्शित होता हैं । जो आदिवासी नाटक में नाटककार द्वारा रची जाती हैं । आदिवासी के विस्थापन व पलायन की समस्या को नाटककार आदिवासियों के अनुरूप नाटकीयता को अपने नाटक मे समेटे हुए रहता हैं । नाटककार पलायन व विस्थापन में होने वाले दर्द से परिचित हैं । वह उस दर्द को उसी रूप में भी बयां करता हैं । वह उनके इस हृदयविदारक क्षण को अपने नाटक में उतारता हैं । उसी तरह निर्देशक भी विस्थापन व पलायन के विषय को मंच पर प्रदर्शित करता है तो उसी दर्द, हृदयविदारक क्षण को नाटकीयता के आधार पर दर्शाता हैं । दोनों में समान तरह की नाटकीयता का पुट समाहित रहता हैं । आदिवासी नाटक व रंगमंच में अन्यान्य तरह की नाटकीयता को उभारा जाता हैं । जो सर्व समाज के रंगमंच में कमतर देखने को मिलता हैं । आदिवासी नाटकों के साथ-साथ उनके पास लोक कथाएं, लोक कहानियां भी मौजूद हैं । जिसमे नाटकीयता के पुट को देखा जाता हैं । आदिवासी समाज अपनी स्थिति, परिस्थिति को नाटकीयता के माध्यम से सर्व समाज के सम्मुख रखने का प्रयास भी कर रहा हैं । वह अपनी नाटकीयता के बल पर ही हिन्दी रंगमंच में अपनी उपस्थिति को दर्ज कराने के प्रयास में भी हैं । हिन्दी रंगमंच ने पिछले दो दशकों में कई तरह के तकनीकी प्रयोग कीये हैं । सत्तर व अस्सी के दशक वाली बात कहीं खोयी हुई सी मालूम होती है। जिसमे तकनीकी सुविधा का कम उपयोग हुआ करता था । 21वीं सदी के पहले दो दशकों में नए रंगमंच का प्रारम्भ दलित, स्त्री, आदिवासी रंगमंच से देखा गया हैं । जिसमे अथाह नाटकीयता के पुट मौजूद हैं । रंगमंच में जिस तरह की निराशा इस सदी में हुई है उसे आदिवासी रंगमच से भरने का प्रयास पुरजोर तरह से हो रहा हैं ।

नाटकीय संसार में जो विषय छूटे हुए थे उन्हें रंगमंच पर लाकर उनका नाटकीयता भरा स्वर प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा हैं ।

आदिवासी नाटकों में नाटकीयता के पुट उनके प्रारम्भिक अवस्था यानी प्राचीन काल से ही नज़र आते हैं । उनकी जीवन जीने की कला में भी नाटकीयता समायी हुई हैं । उनका अपने समूह, समुदाय के बीच किया जाने वाला मनोरंजकपरक नृत्य, नाट्य नाटकीयता के वशीभूत रहता हैं । जो दिन प्रतिदिन नयी रंगमंच की पद्धति को भी परिवर्तित करता हैं । आदिवासी रंगमंच में कभी अभिनेता एक रहता है तो कभी पूरा समूह नाटकीयता का हिस्सा बन जाता हैं । कभी दर्शक पूरा समूह रहता हैं । तो कभी दर्शक बीच-बीच में नाट्य का हिस्सा भी हो चलता हैं । स्थल बदलते रहते है या कभी एक ही स्थल पर नृत्य, नाट्य के स्वरूप का दृश्यांकन होता हैं । नेमिचंद्र जैन अपनी पुस्तक 'रंग परम्परा' में कहते है कि "आदिवासी किसी आसन्न संकट को टालने के लिए या भावी सफलता की कामना में, काल्पनिक स्थितियों, व्यक्तियों या वस्तुओं के साथ तादात्म्य और अनुकरण, अनुष्ठान आदि गतियों अथवा नृत्यों तथा ध्वनियों, गीत, वाद्य द्वारा किया जाता हैं ।" आदिवासी समाज में नृत्य, नाट्य के साथ-साथ गीत, वाद्य यंत्रों का भी प्रचलन प्रारम्भिक अवस्था से हो रहा हैं । शिकार युग की ध्वनियों ने कृषि युग तक आते-आते वाद्य यंत्रों की ध्वनियों में तबदील हो गयी । वाद्य यंत्र की ध्वनियों में तरह-तरह के वाद्य यंत्रों की ध्वनियाँ सम्मिलित होती गयी । इस तरह से आदिवासी रंगमंच में नाटकीयता के पुट परिवर्तित होते हुए अग्रसरित होते रहे और आज भी ही रहे हैं ।

21वीं सदी दलित, स्त्री, आदिवासी विषयों को उभारती नजर आती हैं । जो उन्हें अपनी भूमिका को सर्व समाज के सम्मुख रखने का प्रयास करती है। डा. दिनेश्वर प्रसाद अपनी पुस्तक 'लोक साहित्य और संस्कृति' में कहते है कि "अमरीका और अफ्रीका की आदिम जातियों के लोक नाटक पर्याप्त विकसित और समृद्ध है।" वैश्विक पृष्ठभूमि पर वैश्विक रंगमंच में आदिवासी रंगमंच को स्वीकारा जा चुका हैं । उनके रंगमंच में होने वाले परिवर्तनों की सराहना भी की जा रही हैं । भारतीय रंगमंच मे आदिवासी रंगमंच के सवाल को लोक नाट्यो से जोड़ दिया जाता हैं । जबकि दोनों का रूप, स्वरुप, प्रतिमान, शैली एकदम भिन्न हैं । जो आदिवासी रंगमंच के जीवन की मानसिकता को परिदृश्य करता हैं । वह लोक नाट्यो में समाहित नहीं होता लोक नाट्यों को केवल स्थानीय व भौगोलिक क्षेत्र के आधार पर लोक जनमानस की शास्त्रीय शैली के रूप में स्वीकार्यता प्राप्त हैं । वही आदिवासी रंगमंच किसी तरह की रूढ़ि शैली व बंधी बँधायी परिपाटी से भिन्न हैं । वह रंगमंच में अपने ऐतिहासिक परिदृश्य को उकेर रहा है और वर्तमान में उस पर घटने वाली हर समस्या से उत्पन्न मनोस्थिति का चित्रण कर रहा हैं । आदिवासी रंगमंच की शैली में प्रगाढ़ता के दर्शन हैं । वह मंच पर शब्द व अर्थ की अनुरूपता के साथ साथ अपनी जीवन शैली को भी रखता हैं । उसके मूल में मंच पर उसकी अपनी जिजीविषा है, उसका

अपना स्वतंत्र विचार हैं । स्वतंत्र विचार के साथ सामूहिकता का प्रबल उद्देश्य मौजूद हैं । इस सही रूप को सूत्र में पिरो कर वह रंगमंच के माध्यम से अपनी अभिव्यक्ति को सशक्त बना रहा हैं । इस तरह की सामूहिक भरी वैचारिकी हिन्दी रंगमंच से आज तक नदारद हैं । व्यक्तिवादिता, स्वार्थपरकता, श्रेष्ठता जैसे विषयो को ही आदिवासी रंगमंच नहीं अपनाया हैं । यह आदिवासी रंगमंच के विकास में एक बाधा के समान हैं । इस बाध्य को तोड़ने का कार्य आदिवासी रंगमंच के माध्यम से किया जा रहा हैं ।

हिन्दी मे आदिवासी पृष्ठभूमि आधारित नाटकों की रचना गैर आदिवासी तथा आदिवासी नाटककारों ने की है। हबीब तनवीर का 'हिरमा की अमर कहानी' नाटक सन 1990 को प्रकाशित हुआ इसमें उन्होंने आदिवासी समाज के उत्पीड़न के साथ साथ, आदिवासी समाज में फैले अंधविश्वास को दर्शाया है। जो यह उत्पीड़न,शोषण आज भी आदिवासी समाज को झेलना पड़ रहा है, और अंधविश्वास की पराकाष्ठा दिन प्रतिदिन और बढ़ती जा रही है। जैसे जैसे दूसरे धर्म आदिवासी समाज मै घुस रहे है, उनका धर्मांतरण करवा रहे है, वैसे वैसे आदिवासी समाज में रूढ़िवादिता भी बढ़ती जा रही है। इसके बाद भी आज का आदिवासी आधुनिक होने के साथ साथ व्यवस्था के खिलाफ उलगुलान के लिए सदैव तत्पर है।

बादल सरकार अपने तीसरे रंगमंच की खोज में "भोमा" नाटक लिख देते हैं। जिसका सन 1976 का है। इस समय में बादल सरकार जंगलों मे घूमकर आदिवासी जीवन को समझ रहे थे उनकी कलाओं व समस्याओं से रूबरू हो रहे थे। उसी रूबरू मे उन्होने भोमा नाटक लिखा। जिसमे वह आदिवासी लकड़हारा भोमा की खोज कर रहे है। इसलिए कि वह जंगल में रहने वाला निवासी है तो उनकी जिम्मेदारी अधिक है जंगल को बचाने की। वह आए और जंगलों को कटने से बचाए। इसी खोज में कई उतार चढ़ाव के साथ नाटक शहर,गांव से होता हुआ जंगल में पहुंच जाता है। जंगल जिसकी कोई देखभाल नहीं कर रहा है बस केवल जंगल से खनिज संपदा को नोच नोच कर निकाला जा रहा है। पेड़ों को तो गाजर मूली की तरह काटा जा रहा है। इनकी रक्षा केवल भोमा ही कर सकता है। भोमा आदिवासी है और जंगल का प्रतिनिधित्व भी करता है। जंगल में हजारों वर्षो से जीवन यापन भी कर रहा है।

हबीब तनवीर और बादल सरकार ने रंगमंच मे नई खोज की राह में तथा रंगमंच मे लोक की उपस्थिति में यह नाटकों की रचना की और उनको मंचित भी किया। इसके इतर इसी समय में हिन्दी भाषा में एक और नाटक मिलता है सन 1986 मे लिखा गया विभु कुमार का "हवाओं का विद्रोह"। इस नाटक में विभु कुमार मध्य प्रदेश में स्थित पातालकोट में बसने वाले आदिवासियों का जिक्र करते है। वह बताते है कि आदिवासियों पर आधुनिकीकरण का नकारात्मक प्रभाव किस प्रकार पड़ रहा है और किस प्रकार विकास की आड़ में आदिवासी को अंधा बना कर उनको उनकी संस्कृति,परिवेश से अलग किया जा रहा है। नाटककार उद्देश्य

स्वरूप कहते भी है कि अगर आदिवासियों का सही मायने में विकास करना है तो उनको उनकी जमीन,जंगल,संस्कृति के मध्य रखकर ही विकास किया जा सकता है। अगर उन्हें उनकी जमीन से अलग करके आप विकास को खोजेंगे तो वह गायब ही मिलेगा, और आदिवासी समाज गर्त की ओर बढ़ता रहेगा। गर्त में जाने के कारण वह विद्रोह जैसे रुपों को समय समय पर लाता रहता है। जिससे उसकी सभ्यता मे बसे शौर्य के रूपों की झलक भी मिलती है।

विमर्श के इस वातावरण में सम्मिलित ऋषिकेश सुलभ का नाटक "धरती आबा" जी समर्पित है महाश्वेता देवी जी को। इसका सन 2010 है। यह विमर्श मे समय में आए इस नाटक की अपनी एक अहम भूमिका है। यह नाटक आदिवासी समाज में विश्वास, प्रेरणस्रोत के रूप में व्यख्यायित बिरसा मुंडा के जीवन और उनके उलगुलान पर आधारित है। बिरसा मुंडा ने ब्रिटिश सरकार के नाक में दम कर दिया था। उनको लोहे के चने चबवा दिए थे। बिरसा मुंडा को धरती आबा इसलिए भी पुकारा जाता है कि वह धरती को बचाने वाले ईश्वर,भगवान है। जो आदिवासी समाज में जन्मे है। अपनी छोटे से जीवन में बिरसा ने वह किया जिसके लिए वह आज भी आदिवासी समाज में पूजे जाते है। यह नाटक लिखा गया और इस नाटक की रचना मे इसके मंचन स्वरूप का भी विवरण है।

विमर्श के प्रभाव स्वरूप, और प्रकृति के लिए सचेत भाव रखने वाले अनिल रंजन भौमिक ने "स्वप्न दू: स्वप्न" नाटक लिखा। जिसमे वह वैश्विक परिप्रेक्ष्य मे आदिवासियों को खदेड़े जाने की और जंगलों को बर्बाद करने के दृश्य को उभारते है। विश्व में बसे सभी आदिवासी जंगल में रहते है,जंगल में उपजे संसाधनों से जीवन यापन करते है। यही स्थिति भारत में भी है। जंगल में बसे खनिज संसाधनों पर विश्व के स्वार्थवृत्ति समाज की नजर गढ़ी हुई है। वह आज तक भी जंगलों को अपने लोभ मे काटते जा रहे है। जिसका सीधा प्रभाव आदिवासी समाज पर पड़ रहा है। उनको वहां से खदेड़ कर कहीं और जाने पर मजबूर किया जा रहा है। यही स्थिति भारत मे भी हूबहू है। भौमिक जी अपने इस नाटक मे आदिवासियों की वैश्विक परिप्रेक्ष्य मे यथास्थिति को बयां करते है।

विमल कुमार टोप्पो आदिवासी नाटककार है जिन्होंने सन 2018 में "कोड़ा राज्य" नाटक लिखा। यह नाटक भी आदिवासी समाज की समस्याओं से अवगत कराता है। कि किस प्रकार आदिवासियों को लालच देकर उन्हें दूसरे शहरों में नौकरी के लिए ले जाया जाता है। और वहा जाकर उनके साथ भरपूर शोषण होता है। यह स्थिति आज तक भी वैसी की वैसी ही बनी हुई है। इनकी ओर दृष्टि डालने वाला कोई नहीं है। इनके लिए आवाज उठाने वालो को नक्सल या अन्य नाम देकर देशद्रोह आदि साबित किया जाता है। इस तरह की

समस्याओं से निजात पाने के लिए आदिवासी समाज आज भी संघर्ष कर रहा है। वह अपने अधिकारों के लिए सचेत है। और शोषण, उत्पीड़न को जड़ से उखाड़ फेंकना चाहता है।

इसी तरह का नाटक विनोद कुमार का "बुधनी" नाटक है जो सन् 2017 मे लिखा गया। इस नाटक में भी आदिवासी समाज में फैले अंधविश्वास के कारण पलायन और पलायन के पश्चात होने वाले दिकू समाज द्वारा शोषण की सजीवता उभरती है। यह स्थिति हर पल आदिवासी के जीवन को खोखला कर रही है। और आदिवासी को उसकी संस्कृति से दूर करती जा रही है। कब तक इस तरह की पक्षपात पूर्ण नीतियों का आदिवासी समाज को शिकार होना होगा।

निष्कर्ष:-

यह सभी नाटक आदिवासी समाज की समस्याओं के साथ साथ उनके जीवन दर्शन,जीवन पद्धति, जीवन के उद्देश्य को कथा तथा उसके मंचीय स्वरूप में प्रस्तुत करती है। हिन्दी मे आदिवासी लोक नाट्य को इन नाटकों व अन्य मौजूद नाटकों से गति और नई दिशा मिल रही है। जिससे आदिवासी समाज भी अपने समुदाय की सभी समस्याओं से परिचित हो रहा है। आधुनिकीकरण ने भी आदिवासी को तकनीकी स्तर पर मजबूती प्रदान की है। वह इन तकनीकों के माध्यम से अपनी बात को सभी जगह मजबूती से रख रहा है। हिन्दी मे भी आदिवासी नाटकों को स्वीकार्यता प्राप्त होती जा रही है। हिन्दी रंगमंच में स्त्री ने अपना परचम लहराया। चाहे वह नाटककार के रूप में हो या निर्देशक के रूप में अन्यथा रंगकर्मी के रूप में। सभी रूपों में भारतीय रंगमंच मे स्त्री की उपस्थिति को स्वीकार कर लिया है। इसी तरह आदिवासी नाटक और रंगमंच हर भाषा में उपलब्ध होने के साथ साथ अपनी अलग पहचान बनाते जा रहे है। नाटक व रंगमंच के माध्यम से आदिवासी समाज अपने जीवन के सभी परिदृश्यों को सहजता,गंभीरता, सरलता, उद्देश्यपूर्ण आदि बिंदुओं से उभर रहे है। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय जैसे बड़े संस्थानों को भी आदिवासी कलाओं व रंगमंच का सहारा लेना पड़ रहा है। यह एक नएपन की स्वीकार्यता है। आदिवासी नाटकों व उनके रंगमंच मे नयापन है, प्रभावी पन है। जिससे आदिवासी कलाकारों और नाटककारों की पहचान भी धीरे धीरे वृहत रूप धारण कर रही है। जिससे आदिवासी कलाकारों व नाटककारों के साथ साथ निर्देशक भी अपनी कला का परचम लहरा रहे है। इसमें गैर आदिवासी कलाकारो और नाटककारों का भी बड़ा योगदान है। जो निष्पक्षता के साथ आदिवासी समाज के मुद्दों को गंभीरता से लेकर रचना व मंच पर स्थान दे रहे है। हिन्दी मे आदिवासी नाटक लिखने वाले रचनाकारों की संख्या में भी इजाफा हो रहा है। हिन्दी आदिवासी नाटक अपनी संस्कृति, सभ्यता, परम्परा के मानव कल्याण के उद्देश्य से मानवीयता,सामूहिकता भी भारतीय लोक समाज में प्रसारित कर रहे है।

संदर्भ सूची

1. गिऑर्गी प्लेखानोव, कला के सामाजिक उद्गम, पृष्ठ संख्या.104, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण:2003
2. गिऑर्गी प्लेखानोव, कला के सामाजिक उद्गम, पृष्ठ संख्या.104, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण:2003
3. डॉ प्रमोद कुमार मीणा, आदिवासी जीवन जगत की बारह कहानियां एक नाटक, पृष्ठ संख्या.8, अनुज्ञा बुक्स प्रकाशन, प्रथम संस्करण:2017
4. गिऑर्गी प्लेखानोव, कला के सामाजिक उद्गम, पृष्ठ संख्या.82, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण:2003
5. नेमिचन्द्र जैन, रंग परम्परा, पृष्ठ संख्या.13, वाणी प्रकाशन, द्वितीय संस्करण:1996
6. डॉ दिनेश्वर प्रसाद, लोक साहित्य और संस्कृति, पृष्ठ संख्या.48, लोक भारती प्रकाशन, प्रथम संस्करण:1973
7. विनोद कुमार,आदिवासी जीवन जगत की बारह कहानियां एक नाटक, पृष्ठ संख्या.119-144, अनुज्ञा बुक्स प्रकाशन, प्रथम संस्करण:2017
8. हृषिकेश सुलभ, धरती आबा, पृष्ठ संख्या.9-96, राजकमल प्रकाशन, संस्करण: पहला,2010
9. विभु कुमार, हवाओं का विद्रोह, पृष्ठ संख्या.1-76, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, प्रथम संस्करण:1986
10. हबीब तनवीर, हिरमा की अमर कहानी, पृष्ठ संख्या.7-72, पुस्तकायन प्रकाशन, संस्करण:1990
11. बादल सरकार, भोमा, पृष्ठ संख्या.4-48, समानांतर पत्रिका,समानांतर प्रकाशन,संस्करण:2017
12. विमल कुमार टोप्पो, कोड़ा राज्य, पृष्ठ संख्या.322-351, पक्षधर पत्रिका प्रकाशन, संस्करण:जुलाई 2018- जून 2019
13. अनिल रंजन भौमिक, स्वप्न दु:स्वप्न, पृष्ठ संख्या.68-83, समानांतर पत्रिका, समानांतर प्रकाशन, संस्करण:2017